एम.एम. कासिम

बनाम

मनोहर लाल शर्मा एवं अन्य

7 अप्रैल, 1981

[डी.ए. देसाई, आर.एस. पाठक एवं ई.एस. वेंकटरामैया, न्यायमूर्तिगण]

बिहार भवन (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम 1947 - धारा 2(डी), 11(1) (सी) की व्याख्या एवं 11(1)(डी) - मकान मालिक - अर्थ - वास्तविक व्यक्तिगत आवश्यकता एवं चूक के आधार पर किरायेदार की बेदखली का वाद - मकान मालिक की संपत्तियों का विभाजन - क्या वाद में संपत्ति किसी ऐसे व्यक्ति को आवंटित की गई है जो बेदखली की कार्यवाही में पक्षकार नहीं है? - क्या मकान मालिक बेदखली की कार्यवाही को जारी रखने का हकदार है?

विधियों की व्याख्या — किराया नियंत्रण अधिनियमों का प्रशासन — न्यायालयों को विधायिका के उद्देश्य एवं अभिप्राय को ध्यान में रखना चाहिए।

शब्द और वाक्यांश-मकान मालिक-अर्थ-धारा 2(डी) और 11(1)(सी) की व्याख्या। बिहार भवन (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1947।

उत्तरदाता/ओं 1 और 2, उत्तरदाता सं.3 के भाई के पुत्र हैं। इन उत्तरदाताओं ने बिहार भवन (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1947 की धारा 11 (1)(सी) और (डी) के तहत अपीलकर्ता को दुकान से बेदखल करने के लिए वाद दायर किया, जिसमें आरोप लगाया गया कि उत्तरदाताओं को सद्भावना से दुकान का कब्जा चाहिए था, क्योंकि प्रथम उत्तरदाता, जो एक योग्य चिकित्सक बन गया था, एक कार्यालय और एक क्लिनिक खोलना चाहता था, और सितंबर, अक्टूबर और नवंबर 1972 के तीन महीनों के किराए का भुगतान नहीं किया गया था। अपीलकर्ता ने बेदखली के वाद का विरोध करते हुए तर्क दिया कि उसने तीन महीने

तक किराया देने में कोई चूक नहीं की थी, क्योंकि किराया तो दिया गया था लेकिन कोई रसीद जारी नहीं की गई थी और उत्तरदाता किराया भुगतान की रसीद जारी करने के वैधानिक दायित्व से बच रहे थे। अपीलकर्ता दिसंबर 1972 से मनीऑर्डर द्वारा किराया भेजने के लिए मजबूर था और उसने इसे महीने दर महीने भेजा, इसलिए उसे चूककर्ता नहीं कहा जा सकता। व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार का खंडन करते हुए तर्क दिया गया कि संपत्ति एक फर्म की थी, और इसलिए, फर्म के व्यवसाय के अलावा किसी अन्य व्यवसाय के लिए किसी भी साझेदार द्वारा इसके उपयोग पर दावा नहीं किया जा सकता है। यह भी तर्क दिया गया कि उत्तरदाताओं के पास भी कई मकान थे और उत्तरदाता सं. 1 के लिए उनकी आवश्यकता गलत और अनुचित थी।

विचारण न्यायालय ने किराया न चुकाने और व्यक्तिगत आवश्यकता दोनों ही मामलों में अपीलकर्ता के विरुद्ध फैसला सुनाते हुए उसे बेदखल करने का आदेश दिया।

अपीलकर्ता ने अपील दायर की और जब अपील अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष लंबित थी, तब उसने दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के तहत एक आवेदन दिया, जिसमें उसने तर्क दिया कि फर्म के सदस्यों के बीच संपत्तियों का विभाजन हो चुका था और वादग्रस्त दुकान 'पी' को आवंटित की गई थी, जो न तो वादी था और न ही कार्यवाही में पक्षकार था। यदि दुकान का एकमात्र स्वामी होने के नाते वह उसका था, तो उत्तरदाता और विशेष रूप से उत्तरदाता सं.1, अपीलकर्ता को उसकी व्यक्तिगत आवश्यकता के लिए बेदखल नहीं कर सकते थे। अपीलीय न्यायाधीश ने यह मानते हुए कि उत्तरदाताओं को अपीलकर्ता द्वारा वादग्रस्त दुकान के मकान मालिक के रूप में स्वीकार कर लिया गया था, बाद का विभाजन आदेश अपीलकर्ता के लिए सहायक नहीं होगा और विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमत होते हुए कि तीन महीनों की अवधि के लिए किराए के भुगतान में चूक हुई थी, उन्होंने अपील खारिज कर दी।

अपीलकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय में दायर दूसरी अपील को यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि अपीलकर्ता ने प्रथम अपीलीय न्यायालय में **दीवानी** प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के तहत उचित आवेदन प्रस्तुत नहीं किया था और चूंकि मामले के अभिलेखों में ऐसा कोई आवेदन नहीं था, इसलिए इस तर्क पर विचार नहीं किया जा सकता था, और अपीलकर्ता ने किराए के भुगतान में चूक के प्रश्न पर न्यायालयों के निर्णय को चुनौती नहीं दी थी।

इस न्यायालय में अपील में, अपीलकर्ता किरायेदार की ओर से यह तर्क दिया गया कि: (1) उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के इस तर्क को अस्वीकार करने में गलती की कि विभाजन डिक्री के मद्देनजर उत्तरदाताओं के लिए व्यक्तिगत आवश्यकता का आधार अब उपलब्ध नहीं है, क्योंकि न केवल मकान मालिक को वाद की शुरुआत में अपनी आवश्यकता साबित करनी होगी, बल्कि जिस मकान मालिक की आवश्यकता के लिए वाद शुरू किया गया है, उसे यह भी दिखाना होगा कि उसकी आवश्यकता पूरी कार्यवाही के दौरान बनी रहती है और परिसर में उसका कोई स्थायी हित है, जिसका कब्जा उसके निजी उपयोग के लिए मांगा जा रहा है। (2) उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी करने में गलती की कि आदेश 41, नियम 27 के तहत उचित आवेदन के अभाव में न्यायालय इस तर्क पर विचार नहीं कर सकता, और यह कि अपीलकर्ता द्वारा दो महीने के किराए के भुगतान में चूक करने के निष्कर्ष पर न्यायालय के समक्ष प्रश्न नहीं उठाया गया था।

अपील स्वीकार करते हुए,

अभिनिर्धारित: 1. उच्च न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय अपास्त किए जाते हैं और मामला प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेजा जाता है, जो आदेश 41, नियम 27 के तहत आवेदन स्वीकार करने और विभाजन वाद के निर्णय की प्रमाणित प्रति को अभिलेख पर लेने के बाद और पक्षों को कोई अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देने के बाद यह निर्णय करे कि क्या विभाजन निर्णय वाद की दुकान को 'पी.' को अनन्य

रूप से हस्तांतरित करता है और क्या उत्तरदाता वाद जारी रख सकते हैं और उत्तरदाता सं. 1 की व्यक्तिगत आवश्यकता और/या चूक के आधार पर अपीलकर्ता को बेदखल करने के हकदार हैं।

[385 जी-386 बी]

2. किराया अधिनियम की धारा 2(डी) में परिभाषित 'मकान मालिक' शब्द की परिभाषा बहुत व्यापक है। इस व्यापक परिवेश को धारा 11 की उपधारा (1) के उपखंड (ग) में दिए गए स्पष्टीकरण द्वारा सीमित कर दिया गया है। पट्टे पर दिए गए भवन की अपनी उचित आवश्यकता के आधार पर कब्ज़ा मांगने वाले व्यक्ति को यह सिद्ध करना होगा कि वह मकान मालिक है, इस अर्थ में कि वह भवन का स्वामी है और उसे अपने अधिकार से उस पर कब्जा करने का अधिकार है। मात्र किराया वसूलने वाला व्यक्ति, यद्यपि मकान मालिक शब्द के व्यापक अर्थ में शामिल हो सकता है, धारा 11(1)(सी) के प्रयोजनों के लिए मकान मालिक नहीं माना जा सकता। [376 जी-378 बी]

3. धारा 11 (1)(सी) के प्रयोजन के लिए 'मकान मालिक' शब्द के अर्थ को सीमित करके विधायिका ने अपना आशय प्रकट किया है कि केवल मकान मालिक ही अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर बेदखली का वाद कर सकता है, यदि वह, वह व्यक्ति है जिसे स्वयं भवन पर कब्जा करने का पूर्ण अधिकार है और अपने से कम अधिकार रखने वाले किसी भी व्यक्ति को इससे बाहर रखा गया है। ऐसा मकान मालिक जो एक मालिक है और जिसे अपने अधिकार से भवन पर कब्जा करने का अधिकार है, अपने उपयोग के लिए कब्जा मांग सकता है। किराया वसूलने वाला या अभिकर्ता अपने अधिकार से घर पर कब्जा करने का हकदार नहीं है। भले ही ऐसा व्यक्ति पट्टेदार हो और, इसलिए, मकान मालिक शब्द की विस्तारित समावेशी परिभाषा के अंतर्गत मकान मालिक हो, फिर भी वह इस आधार पर किरायेदार को बेदखल नहीं कर सकता कि वह स्वयं घर पर कब्जा करना चाहता है। वह वास्तविक मालिक के विरुद्ध ऐसा अधिकार का दावा नहीं कर सकता और स्वाभाविक रूप से

वह इस आधार पर किरायेदार को बेदखल नहीं कर सकता कि वह अपने कब्जे के लिए परिसर पर कब्जा चाहता है।

[378 सी, जी]

वर्तमान वाद में अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन बहस समाप्त होने के बाद दायर किया गया था। न्यायाधीश को इसे आदेश 41 नियम 27 के अंतर्गत मानने में कोई आपत्ति नहीं थी, उन्होंने इसे अभिलेख में लिया और गुण-दोष के आधार पर इसकी जांच की। उच्च न्यायालय ने तकनीकी आधार पर द्वितीय अपील में साक्ष्य को नजरअंदाज करने में स्पष्ट रूप से गलती की, क्योंकि आदेश 41, नियम 27 के अंतर्गत उचित आवेदन प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। [373 एफ, 374 सी, 375 ए-बी]

वर्तमान वाद में, आदेश 41, नियम 27, **दीवानी प्रक्रिया संहिता** की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक उचित और नियमित आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसमें अतिरिक्त साक्ष्य के लिए न्यायालय का ध्यान एक महत्वपूर्ण घटना की ओर आकर्षित किया गया था, जो वादी के वाद को जारी रखने के अधिकार की जड़ पर प्रहार करती है। इसके साथ ही, विभाजन वाद में डिक्री की प्रमाणित प्रति के रूप में साक्ष्य प्रस्तुत किया गया था, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उत्तरदाता, भले ही उन्हें वाद शुरू करने का कुछ अधिकार प्राप्त था, संपत्ति में अपना पूर्ण हित खो चुके थे और संपत्ति अब एक ऐसे व्यक्ति के अनन्य स्वामित्व में आ गई थी जो वाद का पक्षकार नहीं था, इसलिए वे अपने लाभ के लिए वाद को जारी रखने के हकदार नहीं थे। अधीनस्थ अपीलीय न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने इस महत्वपूर्ण साक्ष्य को नजरअंदाज करने में स्पष्ट रूप से गलती की, जो मामले की जड़ तक जाता है और उत्तरदाताओं को वाद से बाहर कर देता है।

[381 सी, जी]

पसुपुलेटि वेंकटेश्वरलु बनाम द मोटर एंड जनरल ट्रेडर्स, (1975] 3 एस.सी.आर.958 एवं लछमेश्वर प्रसाद शुकुल बनाम केश्वर लाल चौधरी, (1940} एफ.सी.आर. 85, संदर्भित।

4. यह पुरानी धारणा कि पुनः प्रवेश का अधिकार असीमित है और कि मकान मालिक अपनी आवश्यकता का एकमात्र निर्णायक होता है, समाज की आवश्यकताओं के आगे झुक गई है, जिसके कारण किराया अधिनियम बनाने पड़े, जो विशेष रूप से असीमित पुनः प्रवेश के अधिकार को सीमित करने और यह प्रावधान करने के लिए बनाए गए थे कि केवल किराया अधिनियम में निर्धारित कुछ सक्षम आधारों को सिद्ध करने पर ही मकान मालिक पुनः प्रवेश कर सकता है। ऐसा ही एक आधार मकान मालिक की व्यक्तिगत आवश्यकता है। व्यक्तिगत आवश्यकता के मामले की जांच करते समय, यदि यह बताया जाता है कि मकान मालिक के पास कोई खाली परिसर है जिस पर वह आसानी से कब्जा कर सकता है, तो उसकी आवश्यकता में जरूरत का तत्व अनुपस्थित होगा। यह कहकर इस पहलू को खारिज करना कि मकान मालिक को परिसर चुनने का असीमित अधिकार है, किराया अधिनियम के *मूल उद्देश्य को* ही नकारना है। यदि किरायेदार यह साबित कर दे कि मकान मालिक के पास कोई अन्य खाली परिसर है, तो यह अपने आप में मकान मालिक के दावे को खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है, लेकिन ऐसी स्थिति में न्यायालय मकान मालिक से यह साबित करने की अपेक्षा करेगा कि जो परिसर खाली है वह उसके कब्जे के उद्देश्य से या उस उद्देश्य के लिए उपयुक्त नहीं है जिसके लिए उसे परिसर की आवश्यकता है, जिसके संबंध में न्यायालय में कार्रवाई शुरू की गई है। यह कहना कि मकान मालिक को अपनी इच्छानुसार कोई भी परिसर चुनने का असीमित अधिकार है, और वह भी इस तथ्य के बावजूद कि उसके पास कुछ खाली परिसर हैं जिन पर वह कब्जा नहीं करता और किरायेदार को हटाने का प्रयास करता है, किराया अधिनियम द्वारा समर्थित नहीं होगा। यह दृष्टिकोण मकान मालिक के लालच को बढ़ावा देगा, जिसके तहत वह कम किराया देने वाले किरायेदारों को निजी उपयोग के नाम पर बेदखल कर देता है और अपने कब्जे वाले परिसर को बाजार दर पर किराए पर दे देता है। इसी प्रवृत्ति को रोकने के लिए किराया अधिनियम बनाया गया था, और इसलिए, किराया अधिनियम का प्रशासन करने वाले न्यायालय का यह कर्तव्य है कि

वह अधिनियम बनाते समय विधायिका के उद्देश्य और इरादे को ध्यान में रखे। न्यायालय को कानूनी नियमों और जीवन की एक आवश्यकता - आश्रय - के बीच संबंध को समझना और उसका मूल्यांकन करना चाहिए। [383 सी-384 ए]

वर्तमान वाद में उच्च न्यायालय के निर्णय में कुछ ऐसे कथन हैं जो दर्शाते हैं कि (i) कुछ पहलुओं का निपटारा सरसरी तौर पर किया गया है; उनमें स्पष्टता की कमी है, और (ii) एक किरायेदार जिसने स्वयं सहित आठ साक्षियों की गवाही देकर यह साबित किया कि किराया चुका दिया गया था और जिसने मकान मालिकों द्वारा दिए गए नोटिस के जवाब में इस तथ्य का विशेष रूप से उल्लेख किया था और जिसने अपीलीय स्तर पर अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन करके सावधानीपूर्वक अपना पक्ष रखा था, वह अपनी दलील नहीं छोड़ता और यदि उसने वास्तव में इसे छोड़ दिया होता तो मामले को सर्वोच्च न्यायालय तक ले जाने का कोई औचित्य नहीं था। संपत्तियों के विभाजन की बाद की घटना का मकान मालिक-उत्तरदाताओं के किराए के भुगतान न करने के आधार पर अपीलकर्ता को बेदखल करने के अधिकार पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसलिए मामले को वापस भेजना अपरिहार्य है। [384 जी -385 बी, जी]

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: दीवानी अपील सं. 758/1978।

पटना उच्च न्यायालय (रांची पीठ) के दिनांक 5.10.1977 के निर्णय एवं आदेश/डिक्री के विरुद्ध विशेष अनुमति से अपील। रांची में अपीलीय डिक्री सं. 204 वर्ष 1976 (आर) में।

आर.के. गर्ग, वी.जे. फ्रांसिस, डी.के. गर्ग और एस.के. जैन अपीलकर्ता के लिए।

सरजू प्रसाद, एस.एन. मिश्रा और ए.एन. बर्दियार उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय

न्यायमूर्ति देसाई द्वारा सुनाया गया। बेदखली डिक्री के अधीन एक किरायेदार इस विशेष अनुमति से अपील में इसकी वैधता पर प्रश्न उठाता है।

उत्तरदाता 1 और 2, उत्तरदाता 3 किशोरीलाल विश्वकर्मा के भाई के पुत्र हैं। उत्तरदाताओं ने बिहार राज्य के गिरिडीह नगरपालिका क्षेत्र के वार्ड संख्या 3 में स्थित होल्डिंग संख्या 188 के एक भाग से बिहार भवन (पट्टा, किराया एवं बेदखली) नियंत्रण अधिनियम 1947 (संक्षेप में 'किराया अधिनियम') की धारा 11 (2) (सी) और (डी) के तहत अपीलकर्ता को बेदखल करने के लिए **वाद** शुरू किया। कब्जे का दावा धारा 11(1)(सी) में उल्लिखित आधार पर आधारित था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उत्तरदाताओं को प्रथम उत्तरदाता मनोहरलाल शर्मा द्वारा कार्यालय और क्लिनिक खोलने के लिए दुकान का कब्जा सद्भावनापूर्वक चाहिए था, जो एम.बी.बी.एस. की डिग्री प्राप्त करके एक योग्य चिकित्सक बन चुके थे। दावा जिस अतिरिक्त आधार पर आधारित था, वह धारा 11(1)(डी) के अनुसार दो महीने या उससे अधिक की अवधि के लिए किराए के भुगतान में चूक का सामान्य आधार था। शिकायत की गई चूक सितंबर, अक्टूबर और नवंबर 1972 के महीनों के किराए का भुगतान न करना था।

अपीलकर्ता ने वाद का विरोध करते हुए *अन्य बातों के साथ* यह तर्क दिया कि उसने सितंबर, अक्टूबर और नवंबर 1972 के महीनों के किराए के भुगतान में कोई चूक नहीं की थी, और किराया चुकाया तो गया था लेकिन कोई रसीद जारी नहीं की गई थी। चूंकि उत्तरदाता किराए के भुगतान की रसीद जारी करने के वैधानिक दायित्व से बच रहे थे, इसलिए अपीलकर्ता को दिसंबर 1972 से मनी ऑर्डर द्वारा किराया भेजना पड़ा और उसने इसे महीने दर महीने भेजा। इसलिए, उसे धारा 11 (1) (डी) के अर्थ में चूककर्ता नहीं कहा जा सकता। व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार का खंडन करते हुए, अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि संपत्ति एक फर्म की थी, इसलिए किसी भी साझेदार द्वारा फर्म के व्यवसाय के अलावा किसी अन्य व्यवसाय के लिए उस पर दावा नहीं किया जा सकता। और किसी भी वाद में, उत्तरदाताओं के कब्जे में कई मकान हैं और मनोहर लाल शर्मा की ओर से लगाया गया आरोप गलत और अनुचित था।

विद्वान विचारण न्यायालय के न्यायाधीश ने नौ मुद्दे निर्धारित किए। उन्होंने किराए के भुगतान में चूक और व्यक्तिगत आवश्यकता दोनों ही मामलों में अपीलकर्ता के खिलाफ फैसला सुनाया और अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए कुछ तकनीकी बचावों का जवाब देने के बाद, विचारण न्यायालय के न्यायाधीश ने वाद को अपीलकर्ता के पक्ष में पारित कर दिया। अपीलकर्ता ने अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष अपील दायर की। जब अपील विद्वान द्वितीय अतिरिक्त अधीनस्थ न्यायाधीश, गिरिडीह के समक्ष लंबित थी, तब अपीलकर्ता ने 28 सितंबर, 1976 को एक शपथपत्र के साथ एक आवेदन दायर किया, जो दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के तहत दायर किया गया था। इसमें उसने तर्क दिया कि जैसा कि उसने मूल रूप से दावा किया था, दुकान एक फर्म की थी और वाद संख्या 4/1974 में फर्म के सदस्यों के बीच संपत्तियों का विभाजन हो चुका है और वाद वाली दुकान प्यारेलाल को आवंटित की गई है, जो न तो वादी है और न ही कार्यवाही में पक्षकार है। यदि दुकान अब प्यारेलाल की अनन्य स्वामित्व के अंतर्गत है, तो उत्तरदाता और विशेष रूप से उत्तरदाता मनोहर लाल शर्मा, वाद वाली दुकान की अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता के लिए अपीलकर्ता को बेदखल करने की मांग नहीं कर सकते। यह आवेदन दाखिल किया गया था साथ ही आवेदन के अंत में एक शपथपत्र भी प्रस्तुत किया गया था। माननीय अपीलीय न्यायाधीश ने अपने निर्णय के कंडिका 12 में इस आवेदन का उल्लेख करते हुए इसमें उठाए गए तर्क को खारिज कर दिया, यह देखते हुए कि वाद वाली दुकान का आवंटन प्यारेलाल को वाद दाखिल होने के बाद हुआ था और चूंकि पहले उत्तरदाताओं को अपीलकर्ता द्वारा वाद वाली दुकान के मकान मालिक के रूप में स्वीकार किया गया था, इसलिए बाद का विभाजन आदेश अपीलकर्ता के लिए सहायक नहीं होगा। उन्होंने संक्षेप में टिप्पणी की कि 'किसी भी दृष्टि से, व्यक्तिगत आवश्यकता के संबंध में माननीय मुंसिफ का निष्कर्ष सही है और हस्तक्षेप का कोई आधार नहीं है।' उन्होंने विचारण न्यायालय के इस निष्कर्ष से सहमति व्यक्त की कि तीन महीने की अवधि के लिए किराए के भुगतान में चूक हुई थी, और इसलिए भी उत्तरदाता किराया

अधिनियम की धारा 11 (1)(डी) में उल्लिखित आधार पर बेदखली के आदेश के हकदार थे। तदनुसार उन्होंने अपील को लागत सहित खारिज कर दिया।

किरायेदार द्वारा उच्च न्यायालय में दायर की गई दूसरी अपील का भी वही हश्र हुआ। हालांकि, अपीलकर्ता की ओर से उठाए गए तर्कों के प्रति उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण पर ध्यान देना उपयोगी है। किरायेदार का यह तर्क कि उत्तरदाता मनोहरलाल शर्मा की व्यक्तिगत आवश्यकता का आधार अब मान्य नहीं है, क्योंकि वाद संख्या 4/1974 में विभाजन के फैसले के मद्देनजर वादग्रस्त की दुकान में उनका कोई हित नहीं रह गया है, इस अवलोकन के आधार पर खारिज कर दिया गया कि अपीलकर्ता ने दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के तहत उचित आवेदन के साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय में याचिका दायर नहीं की थी, और चूंकि मामले के अभिलेखों में ऐसा कोई आवेदन नहीं था, इसलिए इस तर्क पर विचार नहीं किया जा सकता। वैकल्पिक रूप से, उच्च न्यायालय ने इस तर्क को स्वीकार करना कठिन पाया कि अपील लंबित रहने के दौरान यदि विचाराधीन मकान डिक्री के सह-भागीदारों में से किसी एक के हिस्से में आवंटित कर दिया जाता है, तो उनके पक्ष में पारित डिक्री शून्य हो जाती है और केवल इसी आधार पर अपीलीय न्यायालय द्वारा अपास्त की जा सकती है। दूसरे तर्क के संदर्भ में, उच्च न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ता ने किराए के भुगतान में चूक के प्रश्न पर निम्न दोनों न्यायालयों के निर्णय को चुनौती नहीं दी। तदनुसार, उच्च न्यायालय ने दूसरी अपील को लागत सहित खारिज कर दिया। अतः यह अपील दायर की गई है।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने हमारे समक्ष वही दो तर्क प्रस्तुत किए जो उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे। यह तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता के इस तर्क को खारिज करने में स्पष्ट रूप से गलती की कि वाद संख्या 4/1974 में विभाजन डिक्री के मद्देनजर उत्तरदाताओं के लिए व्यक्तिगत आवश्यकता का आधार अब उपलब्ध नहीं है, क्योंकि न केवल मकान मालिक को वाद की शुरुआत में अपनी आवश्यकता

साबित करनी होती है, बल्कि जिस मकान मालिक की आवश्यकता के लिए वाद शुरू किया गया है, उसे यह भी दिखाना होगा कि उसकी आवश्यकता पूरी कार्यवाही के दौरान बनी रहती है और परिसर में उसका एक स्थायी हित है जिसका कब्जा उसके निजी उपयोग के लिए मांगा जा रहा है। इस दलील के समर्थन में *पसुपुलेटी वेंकटेश्वरलू बनाम द मोटर एंड जनरल ट्रेडर.आर.*([1]) पर अवलंबन किया गया। यह भी तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी करने में गलती की कि आदेश 41 नियम 27 के तहत उचित आवेदन के अभाव में न्यायालय इस प्रकार उठाए गए तर्क पर विचार नहीं कर सकता। यह भी तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी करने में गलती की कि अपीलकर्ता द्वारा दो महीने की अवधि के लिए किराया भुगतान में चूक करने के निष्कर्ष पर उसके समक्ष प्रश्न नहीं उठाया गया था।

उत्तरदाता 1 और 2 सुंदरलाल शर्मा के पुत्र हैं। उत्तरदाता 3 सुंदरलाल शर्मा का भाई है। प्यारेलाल भी सुंदरलाल शर्मा और उत्तरदाता 3 का भाई है, इस प्रकार उत्तरदाता 1 और 2 का चाचा है। ये तथ्य हमारे समक्ष प्रस्तुत तर्क का मूल्यांकन और निपटारा करने के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं।

उत्तरदाता 1 और 2, मनोहरलाल शर्मा और मोतीलाल शर्मा, जो मृतक सुंदरलाल शर्मा के पुत्र हैं, और उत्तरदाता 3, किशोरीलाल विश्वकर्मा, जो सुंदरलाल शर्मा का भाई है, ने बेदखली का वाद दायर किया। *अन्य बातों के अलावा,* उन्होंने कहा कि वे वादग्रस्त दुकान के मालिक हैं और इस प्रकार किराया अधिनियम के अनुसार मकान मालिक हैं और उन्हें वादग्रस्त परिसर का कब्जा चाहिए, पहला कारण यह है कि मनोहरलाल शर्मा वादग्रस्त दुकान में अपना क्लिनिक खोलना चाहते हैं और दूसरा यह कि अपीलकर्ता किरायेदार ने दो महीने या उससे अधिक समय से किराया नहीं दिया है।

---

1 (1975) 3 एस. सी. आर. 948

प्रथम अपीलीय चरण में अपीलकर्ता ने एक आवेदन दायर किया, जिसके वाद शीर्षक में यह उल्लेख किया गया है कि यह एक आवेदन है जो आदेश 41 नियम 27, दीवानी प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रतीत होता है और इसके अंत में आवेदन की विषयवस्तु के संदर्भ में एक शपथ पत्र है। इस आवेदन में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि फर्म की संपत्ति के विभाजन के लिए दायर वाद सं. 4/1974 (*किशोरीलाल विश्वकर्मा बनाम प्यारेलाल विश्वकर्मा*) में 16 अगस्त, 1974 को समझौता हुआ था और डिक्री द्वारा किए गए विभाजन के अनुसार, वादित दुकान प्यारेलाल को आवंटित की गई थी, जिससे वह अपीलकर्ता के संदर्भ में वाद की दुकान का मालिक और मकान मालिक बन गया था। चूंकि अपीलकर्ता न तो वाद का पक्षकार है और न ही उसने वाद में पक्षकार बनने के लिए आवेदन किया है, इसलिए वर्तमान उत्तरदाताओं का संपत्ति में कोई हित नहीं है और इसलिए, किराया अधिनियम में उल्लिखित किसी भी आधार पर उनके पक्ष में बेदखली का आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। उन्होंने इस आधार पर डिक्री को अपास्त करने का अनुरोध किया। आवेदन में आगे कहा गया कि यह तथ्य उत्तरदाताओं के विशेष ज्ञान में होने के कारण अपीलकर्ता के संज्ञान में नहीं आया और उचित सावधानी बरतने के बावजूद ऐसा साक्ष्य उनके संज्ञान में नहीं था या उचित सावधानी बरतने के बाद भी उनके द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सका, और इसलिए उन्होंने अपीलीय स्तर पर यह अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया। आवेदन में कथित तथ्य को प्रमाणित करने वाली विभाजन डिक्री की प्रमाणित प्रति को स्वीकार करने का अनुरोध किया गया। माननीय अपीलीय न्यायाधीश ने न तो आवेदन के प्रारूप में, न ही आदेश 41, नियम 27 की तकनीकी आवश्यकता के अनुपालन में, और न ही अतिरिक्त साक्ष्य को अभिलेख में लेने के लिए न्यायालय में आवेदन करने में किसी देरी में कोई त्रुटि पाई। प्रथम अपीलीय न्यायालय के माननीय न्यायाधीश ने आवेदन में उठाए गए तर्क का गुण-दोष के आधार पर निपटारा किया, जैसा कि उनके निर्णय के कंडिका 12 से स्पष्ट होगा। इस बिंदु

पर मामले को और अधिक उलझाने से बचने के लिए, प्रथम अपीलीय न्यायालय के माननीय न्यायाधीश की टिप्पणी उद्धृत की जा सकती है;

> ''बहस सुनने के बाद, उत्तरदाता अपीलकर्ता ने पी.एस. 4/1974 के समझौता डिक्री की प्रमाणित प्रति दाखिल की (पृष्ठ 10 से शुरू)। इस डिक्री पर अवलंबन करते हुए यह आरोप लगाया गया है कि वादग्रस्त मकान अब प्यारेलाल को आवंटित कर दिया गया है, जो इस वाद में पक्षकार नहीं हैं। अतः अब वादी का इस मकान से कोई संबंध नहीं है। यह घटना डिक्री पारित होने के बाद घटी है। यदि प्यारेलाल सह-भागीदार थे, तो अन्य सह-भागीदार उनकी ओर से वाद दायर करने के लिए सक्षम हैं। नोटिस के जवाब प्रदर्श. 1 से यह स्पष्ट होता है कि स्वत्व वाद 47/73 के वादी उत्तरदाता का स्वामित्व स्वीकार कर लिया गया है। एक बार जब उन्होंने यह स्वीकार कर लिया है कि वादी अब मालिक हैं, तो प्रतिवादी अपीलकर्ता यह नहीं कह सकता कि वादी वादित परिसर के मालिक नहीं हैं। यह विभाजन डिक्री उत्तरदाता को यह कहने में मदद नहीं करेगी कि वादी को अब घर की आवश्यकता नहीं है। उस विभाजन डिक्री के निष्पादन में भी खाली कब्जा आवश्यक होगा। इसलिए, किसी भी दृष्टिकोण से, मैं पाता हूं कि व्यक्तिगत आवश्यकता के संबंध में विद्वान मुंसिफ के निष्कर्ष सही हैं और हस्तक्षेप का आधार है। विद्वान मुंसिफ ने साक्ष्यों का सही मूल्यांकन किया है और सही निष्कर्ष पर पहुंचे हैं।''

इसमें कोई संदेह नहीं है कि विद्वान न्यायाधीश ने अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन पर विचार किया, उसे अभिलेख में दर्ज किया और गुण-दोष के आधार पर उसकी जांच की।

इस पृष्ठभूमि में, हमारी राय में, उच्च न्यायालय ने दूसरी अपील में इस साक्ष्य को तकनीकी आधार पर अनदेखा करने में स्पष्ट रूप से गलती की, क्योंकि आदेश 41, नियम 27 के तहत उचित आवेदन प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय का कहना है:

"जब भी किसी अपीलीय न्यायालय के समक्ष कोई अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है, तो दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के तहत एक नियमित आवेदन दाखिल किया जाता है। मामले के अभिलेखों में ऐसा कोई आवेदन नहीं है।"

स्पष्ट रूप से, यह प्राप्त जानकारी के विपरीत है। लेकिन उच्च न्यायालय दुविधा में प्रतीत हुआ जब उसने इस तर्क पर विचार किया और गुण-दोष के आधार पर इसे खारिज कर दिया। इस बिंदु पर उच्च न्यायालय आगे कहता है:

"इसके अलावा, यह तर्क स्वीकार करना कठिन है कि अपील लंबित रहने के दौरान यदि विचाराधीन मकान डिक्री के सह-भागीदारों में से किसी एक के हिस्से में आवंटित कर दिया जाता है, तो उनके पक्ष में पारित डिक्री अमान्य हो जाती है और केवल इसी आधार पर अपीलीय न्यायालय द्वारा अपास्त की जा सकती है। इस मामले के इस पहलू पर इस न्यायालय द्वारा कई बार विचार किया गया है, जहाँ वादी ने वाद के लंबित रहने के दौरान अपना हित हस्तांतरित किया है। उन मामलों में भी यह माना गया है कि मात्र हस्तांतरण से वादी वाद को चलाने का अधिकार नहीं खो देता है। मेरी राय में, उत्तरदाता के लिए स्थिति और भी कठिन हो जाएगी यदि इस तरह की कोई आपत्ति पहली बार अपील न्यायालय में उठाई जाती है।"

उच्च न्यायालय ने जब कहा कि उसके द्वारा विचार किए जाने वाले पहलू की कई बार जांच की जा चुकी है, तो उसने किन पूर्व उदाहरणों पर अवलंबन किया गया है, यह हमारे लिए अनुमान लगाने का विषय बना हुआ है क्योंकि निर्णय में इसका कोई उद्धरण नहीं है। यदि जिस पूर्व उदाहरण पर अवलंबन किया गया है, उसे निर्णय में उद्धृत किया गया होता, तो हम उसका लाभप्रद रूप से अध्ययन कर सकते थे। इसके अभाव में, यह तर्क विशुद्ध रूप से विधि का प्रश्न होने के कारण, इसके गुण-दोषों के आधार पर ही इसकी जांच करनी होगी।

प्रक्रियात्मक पेचीदगी को आरंभ में ही स्पष्ट किया जा सकता है। क्या अपीलीय न्यायालय के समक्ष आदेश 41, नियम 27 के अंतर्गत उचित आवेदन प्रस्तुत किया गया था? इसका उत्तर सकारात्मक में दिया जाना चाहिए। अभिलेख के अनुलग्नक ॥ पृष्ठ 36 पर दिए गए आवेदन के शीर्षक में लिखा है: 'दीवानी प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 27 के अंतर्गत याचिका'। यह शपथपत्र पर आधारित है। न्यायालयों में यह एक सुस्थापित प्रथा है कि जहाँ आवेदन के साथ शपथपत्र संलग्न करना आवश्यक होता है, वहाँ आवेदन तैयार किया जाता है और उसके अंत में शपथपत्र पर हस्ताक्षर किए जाते हैं। यहाँ तक कि **दीवानी प्रक्रिया संहिता** के आदेश 41, नियम 27 की आवश्यकता को सबसे तकनीकी दृष्टिकोण से भी देखा जाए, तो आदेश 41 नियम 27 के अंतर्गत प्रस्तुत याचिका स्थिति की आवश्यकता को पूरा करती है। आवेदन प्रस्तुत करने में विलंब के तर्क की जाँच अभी की जाएगी, लेकिन उच्च न्यायालय अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए इस तर्क को इस आधार पर खारिज नहीं कर सकता था कि आदेश 41, नियम 27 के अंतर्गत उचित आवेदन अभिलेख में नहीं है। कुछ हद तक यह अवलोकन इंगित करता है कि मामले के अभिलेख की जाँच उस गहनता से नहीं की गई, जैसी अपील का निपटारा करते समय अपेक्षित होती है। दरअसल, प्रथम अपीलीय न्यायालय, जिसकी शिकायत यह थी कि आवेदन बहस समाप्त होने के बाद दायर किया गया था, ने आवेदन को आदेश 41, नियम 27 के तहत आवेदन मानने में कोई आपत्ति नहीं जताई। इसे इसी प्रकार माना गया है और उपरोक्त उद्धृत निर्णय के अनुसार गुण-दोष के आधार पर इसका निपटारा किया गया है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने इस संकीर्ण आधार पर तर्क को खारिज करने में स्पष्ट रूप से गलती की कि आदेश 41, नियम 27 के तहत कोई उचित आवेदन नहीं था। इस मामले को इसी प्रकार निपटाया गया है और उपरोक्त उद्धृत निर्णय के अंश के अनुसार योग्यता के आधार पर इसका निपटारा किया गया है। अतः, उच्च न्यायालय ने इस संकीर्ण आधार पर दलील को खारिज करने में सरासर गलती की कि आदेश 41, नियम 27 के तहत कोई उचित आवेदन नहीं था।

अब, इस तर्क की वैधता की जाँच करते हुए, सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि क्या किसी व्यक्ति द्वारा, जो स्वयं को मकान मालिक होने का दावा करता है और कहता है कि उसे सद्भावनापूर्वक वाद वाली संपत्ति अपने उपयोग और कब्जे के लिए चाहिए, वाद दायर करने पर, क्या वह इस आधार पर कब्जे का आदेश प्राप्त करने का हकदार होगा, भले ही कार्यवाही के दौरान वाद वाली संपत्ति में उसका हित समाप्त हो गया हो और अंतिम आदेश की तारीख को वाद वाली संपत्ति में उसका कोई हित शेष न हो? दूसरे शब्दों में, न्यायालय को किराया अधिनियम के तहत कार्यवाही करते समय, वादी के वाद को खारिज करने वाली बाद की घटनाओं को ध्यान में रखते हुए, कैसे विचार करना चाहिए?

'मकान मालिक' शब्द को किराया अधिनियम की धारा 2 (डी) में परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है:

> "मकान मालिक" में वे व्यक्ति शामिल हैं जो वर्तमान में किसी भवन का किराया प्राप्त कर रहे हैं, या प्राप्त करने के हकदार हैं, चाहे अपने खाते पर या किसी अन्य की ओर से, या अपने और दूसरों के खाते पर, उनकी ओर से या उनके लाभ के लिए, या किसी अभिकर्ता, ट्रस्टी, निष्पादक, प्रशासक, प्राप्तकर्ता या अभिभावक के रूप में, या जो किराया प्राप्त करेंगे, या किराया प्राप्त करने के हकदार होंगे यदि भवन किसी किरायेदार को किराए पर दिया गया हो।"

यह व्यापक परिभाषा बहुत विस्तृत भाषा में लिखी गई है। हालाँकि, इस अभिव्यक्ति की व्यापकता को धारा 11 की उपधारा (1) के उपखंड (सी) के साथ संलग्न स्पष्टीकरण द्वारा कम कर दिया गया है, जो इस प्रकार है:

11. किरायेदारों की बेदखली:

> (ए) किसी अनुबंध या अधिनियम में इसके विपरीत कुछ भी निहित होने के बावजूद, औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 और धारा 12 के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, यदि कोई किरायेदार किसी भवन पर कब्जा रखता है, तो

उसे न्यायालय द्वारा निम्नलिखित में से एक या अधिक आधारों पर पारित डिक्री के निष्पादन के अलावा, उस भवन से बेदखल नहीं किया जा सकता है;

(सी) जहां मकान मालिक को अपने स्वयं के कब्जे के लिए या किसी ऐसे व्यक्ति के कब्जे के लिए, जिसके लाभ के लिए मकान मालिक ने भवन धारण किया है, भवन की उचित और सद्भावनापूर्वक आवश्यकता हो;

बशर्ते कि जहां न्यायालय को लगता है कि ऐसे कब्जे की उचित आवश्यकता भवन के केवल एक भाग से किरायेदार को बेदखल करके और किरायेदार को शेष भाग पर कब्जा जारी रखने की अनुमति देकर काफी हद तक पूरी की जा सकती है, और किरायेदार ऐसे कब्जे के लिए सहमत हो जाता है, तो न्यायालय तदनुसार एक डिक्री पारित करेगा और कब्जे वाले भाग के लिए आनुपातिक रूप से उचित किराया निर्धारित करेगा। किरायेदार, जिसका वह भाग इसके बाद धारा 2 के खंड (एए) के अर्थ में भवन कहलाएगा, और इस प्रकार निर्धारित किराया धारा 5 के अधीन निर्धारित उचित किराया माना जाएगा।

स्पष्टीकरण: इस खंड में "मकान मालिक" शब्द में धारा 2 के खंड (डी) में निर्दिष्ट अभिकर्ता शामिल नहीं होगा।

अतः, धारा 11 (1) (सी) में अधिनियमित सक्षम प्रावधान का लाभ उठाते समय, पट्टे पर दिए गए भवन पर अपने उचित उपयोग की आवश्यकता के आधार पर कब्ज़ा जताने वाले व्यक्ति को यह सिद्ध करना होगा कि वह मकान मालिक है, अर्थात् वह भवन का स्वामी है और उसे अपने अधिकार से उस पर कब्जा करने का अधिकार है। मात्र किराया वसूलने वाले को, यद्यपि व्यापक अर्थ में मकान मालिक शब्द में शामिल किया जा सकता है, धारा 11 (1) (सी) के प्रयोजनों के लिए मकान मालिक नहीं माना जा सकता। यह उपधारा के साथ संलग्न स्पष्टीकरण से स्पष्ट हो जाता है। धारा 11(।)(सी) के प्रयोजन के लिए मकान मालिक शब्द के

अर्थ को सीमित करके, विधायिका ने अपना आशय प्रकट किया है कि केवल वही मकान मालिक अपने व्यक्तिगत उपयोग के आधार पर बेदखली की मांग कर सकता है, यदि उसे स्वयं भवन पर कब्जा करने का पूर्ण अधिकार है और वह अपने से कम अधिकार रखने वाले किसी भी व्यक्ति को बेदखल कर सकता है। ऐसा मकान मालिक, जो स्वामी है और जिसे अपने अधिकार से भवन पर कब्जा करने का अधिकार है, अपने उपयोग के लिए कब्जा मांग सकता है। धारा का उत्तरार्ध ऐसी स्थिति की परिकल्पना करता है जहां मकान मालिक किसी अन्य व्यक्ति के लाभ के लिए भवन धारण कर रहा है, लेकिन उस स्थिति में मकान मालिक किरायेदार को अपने व्यक्तिगत उपयोग के लिए नहीं, बल्कि उस व्यक्ति की व्यक्तिगत आवश्यकता के लिए बेदखल कर सकता है जिसके लाभ के लिए वह भवन धारण कर रहा है। दूसरा खंड न्यासी और न्यास का लाभार्थी की स्थिति पर विचार करता है, लेकिन जब मामला धारा 11 की उपधारा (।) के उपखंड (सी) के प्रथम भाग द्वारा शासित होता है, तो व्यक्तिगत आवश्यकता के लिए कब्जे का दावा करने वाला व्यक्ति ऐसा मकान मालिक होना चाहिए जो अपने स्वयं के उपयोग के लिए कब्जा चाहता हो, और इसका तात्पर्य यह होगा कि वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जिसे पूरी दुनिया के विरुद्ध कब्जे में रहने का अधिकार हो, न कि ऐसा व्यक्ति जिसका संपत्ति में कोई विद्यमान हित न हो और जो केवल किराया वसूलने वाला हो, जैसे कि अभिकर्ता, निष्पादक, प्रशासक या संपत्ति का प्राप्तकर्ता । धारा 11(1)(सी) के प्रयोजनों के लिए, मकान मालिक शब्द का अर्थ वह व्यक्ति हो सकता है जो भवन का स्वामी है और जिसे भवन पर कब्ज़ा और वास्तविक अधिकार रखने का पूरा अधिकार है, और वह अधिकार किसी और के पास नहीं है। ऐसा व्यक्ति ही किरायेदार को इस आधार पर बेदखल कर सकता है कि उसे अपने निजी उपयोग के लिए सद्भावनापूर्वक कब्ज़ा चाहिए। किराया वसूलने वाला या अभिकर्ता अपने अधिकार से घर पर कब्ज़ा करने का हकदार नहीं है। भले ही ऐसा व्यक्ति पट्टेदार हो और इसलिए मकान मालिक शब्द की विस्तारित परिभाषा के अंतर्गत मकान मालिक हो, फिर भी वह इस आधार पर किरायेदार को बेदखल नहीं कर

सकता कि वह व्यक्तिगत रूप से घर पर कब्ज़ा करना चाहता है। वह वास्तविक स्वामी के विरुद्ध ऐसा अधिकार नहीं जता सकता और स्वाभाविक रूप से वह इस आधार पर किरायेदार को बेदखल नहीं कर सकता कि वह अपने निजी उपयोग के लिए परिसर पर कब्ज़ा चाहता है। धारा 11(1)(सी) के घटकों की यही एकमात्र उचित व्याख्या हो सकती है। धारा 11(।) जिसमें लिखा है: "जहाँ मकान मालिक को अपने स्वयं के उपयोग के लिए उचित और सद्भावनापूर्वक, भवन की आवश्यकता हो..... ." यह मानते हुए कि 'मकान मालिक' शब्द को उसी अर्थ में समझा जाना चाहिए जैसा कि परिभाषा खंड में बताया गया है, यहां तक कि एक किराया वसूलने वाला या दिवालियापन की कार्यवाही में न्यायालय द्वारा नियुक्त संपत्ति का प्राप्तकर्ता भी किरायेदार को यह कहकर बेदखल कर सकता है कि वह इमारत को अपने निजी कब्जे के लिए चाहता है, एक ऐसा अधिकार जिसका दावा वह वास्तविक मालिक के खिलाफ नहीं कर सकता था। इसलिए, खंड (डी) की व्याख्या, जो 'मकान मालिक' शब्द के व्यापक अर्थ को कम करती है, स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि खंड (सी) के प्रयोजनों के लिए, ऐसा मकान मालिक, जो 'मालिक' शब्द के अर्थ में, सभी को छोड़कर, घर पर कब्जा करने का अधिकार रखता है, उसे अपने निजी कब्जे के लिए किरायेदार को बेदखल करने का अधिकार होगा।

अगला प्रश्न यह है कि क्या कोई व्यक्ति, जो स्वयं को मकान मालिक होने का दावा करता है, अपने स्वयं के कब्जे के लिए किरायेदार को बेदखल करने की कोशिश करता है, लेकिन अपील की कार्यवाही के दौरान, जो कि वाद की निरंतरता है, इमारत में उसका पूरा अधिकार समाप्त हो जाता है। क्या इमारत में अपना अधिकार समाप्त होने या समाप्त हो जाने के बाद भी वह वाद जारी रखने का हकदार होगा? इस तर्क की योग्यता की जांच करने के लिए, किराया अधिनियम के तहत कार्यवाही की एक विशेषता पर विचार किया जा सकता है। न्यायालय किस हद तक और किन परिस्थितियों में वाद की शुरुआत के बाद की घटनाओं पर ध्यान दे सकती है, यही मूल समस्या है। यह अब कोई *अनिर्णीत* मामला नहीं है और

इस पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता नहीं है। *पसुपुलेटी वेंकटेश्वरलस* के वाद में इस न्यायालय ने आंध्र प्रदेश भवन (पट्टा, किराया और बेदखली) नियंत्रण अधिनियम, 1960 के तहत एक कार्यवाही के संबंध में इस प्रश्न की जांच की थी। उस वाद में मकान मालिक किरायेदार को बेदखल करना चाहता था क्योंकि वह पट्टे पर दी गई जगह में अपना खुद का व्यवसाय शुरू करना चाहता था। दूसरे शब्दों में, यह कार्रवाई व्यक्तिगत आवश्यकता के लिए बेदखली की थी। कार्यवाही के उतार-चढ़ाव में यह पता चला कि कार्रवाई शुरू होने के बाद मकान मालिक को एक और दुकान मिल गई थी जो उसकी आवश्यकता को पूरा करती थी और इस बाद की घटना पर किरायेदार ने न्यायालय से वादी को वाद से बाहर करने का अनुरोध किया। उस समय, कुछ तथ्यों की जांच के लिए प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय को मामला वापस भेजने पर सवाल उठाते हुए मकान मालिक की ओर से दायर पुनरीक्षण याचिका पर उच्च न्यायालय में कार्यवाही लंबित थी। मकान मालिक की ओर से दायर इस पुनरीक्षण याचिका में उच्च न्यायालय ने इस बात पर ध्यान दिया कि मकान मालिक की आवश्यकता पूरी तरह से संतुष्ट हो गई थी क्योंकि उसे दूसरी दुकान का कब्ज़ा मिल गया था। मकान मालिक द्वारा इस न्यायालय में दायर अपील में एक गंभीर आपत्ति उठाई गई कि उच्च न्यायालय कार्यवाही शुरू होने के बाद की किसी घटना पर विचार नहीं कर सकता था और मकान मालिक को वाद में शामिल नहीं कर सकता था, और वह भी उस समय जब मकान मालिक की ओर से पुनरीक्षण याचिका लंबित थी। इस तर्क को नकारते हुए और अपील खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने *लछमेश्वर प्रसाद शुक्ल बनाम केशवर लाल चौधरी (1[1])* के फैसले का संदर्भ देते हुए, *पैटरसन बनाम अलाबामा राज्य* (2[2].) के निम्नलिखित अंश को सहमति के साथ उद्धृत किया:

---

1 [1940] एफ .सी .आर . 85

2.294 यू .स .. 600 (1)7, पर

"हमने अक्सर यह माना है कि अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में हमें न केवल समीक्षाधीन निर्णय में त्रुटि को सुधारने का अधिकार है, बल्कि मामले का ऐसा निपटारा करने का भी अधिकार है जैसा न्याय की आवश्यकता हो। और यह निर्धारित करते समय कि न्याय को क्या आवश्यकता है, न्यायालय किसी भी ऐसे परिवर्तन पर विचार करने के लिए बाध्य है, चाहे वह तथ्य में हो या कानून में, जो निर्णय पारित होने के बाद हुआ हो।"

लचमेश्वर प्रसाद शुक्ल के मामले में प्रमुख निर्णय में, न्यायमूर्ति वरदाचारियार ने टिप्पणी की कि अपील पुनर्विचार की प्रकृति की होने के कारण, भारत में न्यायालयों ने कई मामलों में यह स्वीकार किया है कि अपील के मामले में दी जाने वाली राहत को निर्धारित करते समय, अपील न्यायालय उन तथ्यों को भी ध्यान में रखने का हकदार है जो अपील के विरुद्ध निर्णय दिए जाने के बाद अस्तित्व में आए हैं। न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर ने *पसुपुलेटी वेंकटेश्वरलू* के वाद में स्थिति को संक्षेप में बताया:

"हमारी प्रक्रियात्मक न्यायशास्त्र में यह मूलभूत सिद्धांत है कि राहत का अधिकार उस तिथि से विद्यमान माना जाना चाहिए जिस तिथि को वादी कानूनी कार्यवाही शुरू करता है। यह सिद्धांत भी उतना ही स्पष्ट है कि प्रक्रिया न्यायिक प्रक्रिया की सहायक है, न कि स्वामिनी। यदि कोई तथ्य, जो न्यायालय में मामला आने के बाद उत्पन्न होता है और राहत के अधिकार या उसे निर्धारित करने के तरीके पर मौलिक प्रभाव डालता है, न्यायाधिकरण के ध्यान में सावधानीपूर्वक लाया जाता है, तो न्यायाधिकरण उस पर आंखें मूंद नहीं सकता या उन घटनाओं से अनजान नहीं रह सकता जो न्यायिक उपाय को निष्क्रिय या अक्षम बना देती हैं। न्यायसंगतता प्रक्रिया के नियमों को बाध्यकारी बनाने को उचित ठहराती है, जहां कोई विशिष्ट प्रावधान या निष्पक्षता का उल्लंघन नहीं होता है, ताकि वास्तविक न्याय को बढ़ावा दिया जा सके- बेशक, अन्य अयोग्य ठहराने वाले कारकों या उचित

> परिस्थितियों की अनुपस्थिति में। न ही हम अद्यतन तथ्यों पर ध्यान देने की इस शक्ति पर कोई सीमा लगा सकते हैं और इसे विचारण न्यायालय तक सीमित कर सकते हैं। यदि वाद लंबित रहता है, तो यह शक्ति मौजूद रहती है, बशर्ते कि अन्य कोई विशेष परिस्थितियाँ न हों जो कानून या न्याय के उस मार्ग का सहारा लेने से रोकती हों..... हम इस प्रस्ताव की पुष्टि करते हैं कि पक्ष द्वारा दावा किए गए अधिकार या उपाय को न्यायसंगत और सार्थक बनाने के लिए, साथ ही कानूनी और तथ्यात्मक रूप से वर्तमान वास्तविकताओं के अनुरूप बनाने के लिए, न्यायालय कार्यवाही शुरू होने के बाद की घटनाओं और घटनाक्रमों का सावधानीपूर्वक संज्ञान ले सकता है (और कई मामलों में लेना ही चाहिए), बशर्ते कि दोनों पक्षों के प्रति निष्पक्षता के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाए।"

संक्षेप में, आदेश 41, नियम 27, **दीवानी प्रक्रिया संहिता** की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अतिरिक्त साक्ष्य हेतु एक उचित और नियमित आवेदन प्रस्तुत किया गया था, जिसमें न्यायालय का ध्यान एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना की ओर आकर्षित किया गया था, जो वादी के वाद को जारी रखने के अधिकार को जड़ से उखाड़ फेंकती है। इसके साथ ही, डिक्री की प्रमाणित प्रति के रूप में साक्ष्य प्रस्तुत किया गया था, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वादी, भले ही उनके पास वाद शुरू करने का कुछ अधिकार था, संपत्ति में अपना पूर्ण हित खो चुके थे और संपत्ति अब एक ऐसे व्यक्ति के अनन्य स्वामित्व में आ गई थी जो वाद का पक्षकार नहीं था। इसलिए, वे अपने लाभ के लिए वाद को जारी रखने के हकदार नहीं थे।

क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय और उच्च न्यायालय ने इस अत्यंत महत्वपूर्ण घटना को नजरअंदाज करने में कानून के अनुरूप कार्य किया है? जैसा कि पहले बताया गया है, प्रथम अपीलीय न्यायालय ने तर्क के गुण-दोष की जांच की और इसे इस आधार पर खारिज कर दिया कि यह घटना विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री पारित किए जाने के बाद घटी है, इसलिए इस पर ध्यान नहीं दिया जा सकता, जो इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के

विपरीत है। यही बात उच्च न्यायालय के बारे में भी सच है जब उसने कहा कि भले ही वाद शुरू करने वाले मकान मालिक ने डिक्री पारित होने के बाद संपत्ति में अपना सारा अधिकार खो दिया हो, फिर भी डिक्री अमान्य नहीं हो जाती और किसी भी स्थिति में आदेश 41, नियम 27, दीवानी प्रक्रिया संहिता के तहत उचित आवेदन के अभाव में बाद की घटनाओं पर ध्यान नहीं दिया जा सकता। लेकिन उच्च न्यायालय की अगली टिप्पणी कि जहां विचारण न्यायालय के फैसले के बाद वादी मकान मालिक का संपत्ति में हित समाप्त हो जाता है, वहां वह वाद चलाने और जारी रखने का अपना अधिकार नहीं खोता है, किराया अधिनियम की मूल योजना और धारा 11(1)(सी) और 12 में निहित प्रावधानों के बिल्कुल विपरीत है। इसलिए, दोनों न्यायाल इस महत्वपूर्ण साक्ष्य को नजरअंदाज करने में स्पष्ट रूप से गलत थीं, जो मामले की जड़ तक जाता है और निश्चित रूप से **वादीगण** के वाद को खारिज कर देगा।

एक बार जब संपत्ति में मकान मालिक का हित समाप्त हो जाता है क्योंकि वादग्रस्त संपत्ति का सह-भागीदारों के बीच विभाजन के बाद एक हिस्सेदार को अनन्य मालिक के रूप में आवंटित कर दिया जाता है, तो यदि कार्यवाही में शामिल मकान मालिकों द्वारा कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया जाता है, तो वादी का वाद खारिज किया जा सकता है। इस पर अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं है क्योंकि **वादीगण** ने उत्तरदाता 1 मनोहर लाल शर्मा की व्यक्तिगत आवश्यकता के लिए कब्जे की मांग की थी। मनोहर लाल शर्मा, एक योग्य चिकित्सक होने के नाते, वादग्रस्त परिसर में अपना क्लिनिक शुरू करना चाहते थे। मनोहर लाल शर्मा न तो मालिक हैं, न ही सह-मालिक हैं और न ही वाद संख्या 4/75 में सह-भागीदारों के बीच हुए समझौते के अनुसार विभाजन की तारीख से वादग्रस्त संपत्ति में उनका कोई हित है। यदि आज या विभाजन के फैसले के एक दिन बाद कार्रवाई शुरू की जाए, तो क्या मनोहर लाल शर्मा इस आधार पर वर्तमान अपीलकर्ता को वादग्रस्त दुकान से बेदखल करने के लिए वाद दायर कर सकते हैं कि वह वादग्रस्त दुकान में अपना क्लिनिक शुरू करना चाहते हैं? यदि

मनोहरलाल शर्मा ऐसा वाद दायर कर सकते हैं, तो वे किसी भी ऐसे परिसर से किसी भी किरायेदार को बेदखल कर सकते हैं जिससे उनका कोई संबंध नहीं है। भले ही वाद की शुरुआत में मनोहरलाल शर्मा अपने भाई और चाचा के साथ सह-मालिक थे और इसलिए उन्हें बेदखली की कार्रवाई शुरू करने का अधिकार था, लेकिन एक बार जब सह-मालिक अलग हो गए, संपत्ति का सीमांकन कर विभाजन कर दिया गया और वाद संपत्ति प्यारेलाल को अनन्य स्वामी के रूप में आवंटित हो गई, तो मनोहरलाल शर्मा ऐसी संपत्ति से किरायेदार को बेदखल करने का दावा नहीं कर सकते जिसमें उनका कोई हित नहीं है। और भले ही यह घटना विचारण न्यायालय द्वारा डिक्री पारित किए जाने के बाद हुई हो, इस बाद की घटना को अपीलीय स्तर पर ध्यान में रखा जाना चाहिए था क्योंकि अपील वाद की निरंतरता मात्र है और किराया अधिनियम के तहत कार्यवाही में राहत डिक्री की तारीख की स्थिति के अनुसार तय की जानी चाहिए; डिक्री का अर्थ वह डिक्री है जो अंतिम है और किसी भी न्यायिक कार्यवाही द्वारा संशोधित नहीं की जा सकती। अतः मनोहरलाल शर्मा अपनी निजी आवश्यकता के लिए किरायेदार को बेदखल करने की मांग नहीं कर सकते। इसलिए, धारा 11(1)(सी) के तहत बेदखली का वाद आम तौर पर इस आधार पर खारिज हो जाएगा। हालांकि, चूंकि नए साक्ष्यों पर विचार किया जा रहा है और अपीलीय न्यायालयों और उच्च न्यायालय दोनों ने बाद की घटना को नजरअंदाज करते हुए मामले को देखने में गलती की है, इसलिए यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि पक्षों के बीच न्याय सुनिश्चित करने के लिए मामले को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेजा जाना आवश्यक है।

अगले विषय पर जाने से पहले, किराया अधिनियम के तहत मकान मालिक की व्यक्तिगत आवश्यकता के प्रश्न पर न्यायिक दृष्टिकोण के बारे में कुछ कहना उचित होगा। प्रथम अपीलीय न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश ने उत्तरदाता 1 के व्यक्तिगत आवश्यकता के दावे को स्वीकार करते हुए निम्नलिखित टिप्पणी की:

> "वादी जो भी उचित और न्यायसंगत समझें, निर्णय लेने का अधिकार उन्हीं का है। उत्तरदाता को यह सुझाव देने का अधिकार नहीं है कि उन्हें क्या करना चाहिए। उत्तरदाता ने साक्ष्य प्रस्तुत किया है जिससे पता चलता है कि वादी को गिरिडीह में कुछ और मकान मिले हैं...। प्रतिवादी अपीलकर्ता ने एक वाद संख्या 47/73 के फैसले की प्रमाणित प्रति भी प्रस्तुत की है, जो कि प्रदर्श डी है, केवल यह दिखाने के लिए कि वादी को गिरिडीह स्थित दूसरे मकान के संबंध में बेदखली का आदेश मिला है। मैंने पहले ही बताया है कि वादी को यह तय करना है कि कौन सा मकान उनके लिए उपयुक्त है। उत्तरदाता को यह सुझाव देने का अधिकार नहीं है कि निकट भविष्य में खाली होने वाला मकान वादी के लिए सबसे उपयुक्त है।"

यह दृष्टिकोण देश के लगभग सभी राज्यों में किराया अधिनियमों के लागू होने से संबंधित परिस्थितियों के प्रति घोर अज्ञानता को दर्शाता है। यह पुरानी धारणा कि पुनः प्रवेश का अधिकार असीमित है और मकान मालिक अपनी आवश्यकता का एकमात्र निर्णायक है, समाज की आवश्यकताओं के आगे झुक गई है, जिसके कारण किराया अधिनियमों को विशेष रूप से पुनः प्रवेश के असीमित अधिकार को सीमित करने और यह प्रावधान करने के लिए लागू करना पड़ा कि केवल किराया अधिनियम में निर्धारित कुछ सक्षम आधारों को सिद्ध करने पर ही मकान मालिक पुनः प्रवेश कर सकता है। ऐसा ही एक आधार मकान मालिक की व्यक्तिगत आवश्यकता है। व्यक्तिगत आवश्यकता के मामले की जांच करते समय, यदि यह बताया जाता है कि मकान मालिक के पास कोई खाली परिसर है जिस पर वह आसानी से कब्जा कर सकता है, तो उसकी आवश्यकता में आवश्यकता का तत्व अनुपस्थित हो जाएगा। यह कहकर इस पहलू को खारिज करना कि मकान मालिक को परिसर चुनने का असीमित अधिकार है, किराया अधिनियम के *मूल उद्देश्य* को ही नकारना है। निस्संदेह, यदि किरायेदार यह साबित कर दे कि मकान मालिक के पास कोई अन्य खाली परिसर है, तो यह अपने आप में मकान मालिक के दावे को खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है।

लेकिन ऐसी स्थिति में न्यायालय मकान मालिक से यह अपेक्षा करेगा कि वह यह साबित करे कि खाली परिसर उसके रहने के उद्देश्य से या उस उद्देश्य के लिए उपयुक्त नहीं है जिसके लिए उसे उस परिसर की आवश्यकता है जिसके संबंध में न्यायालय में वाद शुरू किया गया है। हालांकि, यह कहना कि मकान मालिक को अपनी इच्छानुसार कोई भी परिसर चुनने का असीमित अधिकार है, और वह भी इस तथ्य के बावजूद कि उसके पास कुछ खाली परिसर हैं जिन पर वह कब्जा नहीं करेगा और किरायेदार को हटाने का प्रयास करेगा, किराया अधिनियम द्वारा समर्थित नहीं है। यह दृष्टिकोण मकान मालिक के लालच को बढ़ावा देगा कि वह व्यक्तिगत उपयोग के नाम पर कम किराया देने वाले किरायेदारों को निकाल दे और अपने कब्जे वाले परिसर को बाजार दर पर किराए पर दे दे। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए ही किराया अधिनियम बनाया गया था, इसलिए किराया अधिनियम का प्रशासन करने वाले न्यायालय का यह कर्तव्य बनता है कि वह अधिनियम बनाते समय विधायिका के उद्देश्य और आशय को ध्यान में रखे। न्यायालय को कानूनी नियमों और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं - आश्रय - के बीच के संबंध को समझना और उसका मूल्यांकन करना चाहिए, और इस बात को भी समझना चाहिए कि समाज का एक वर्ग दूसरे वर्ग से पृथ्वी के किसी हिस्से में निवास करने की अनुमति के बदले कर कैसे वसूलता है। पैट कार्लन द्वारा संपादित 'कानून का समाजशास्त्र' में, लेखक इंग्लैंड और वेल्स में किराए और किराया कानून की जांच करते हुए निम्नलिखित अवलोकन प्रस्तुत करते हैं:

> "नवशास्त्रीय अर्थशास्त्र और अनुभववादी राजनीतिक सिद्धांत के प्रचलित प्रतिमानों ने कानून और कानूनी संस्थाओं की वैचारिक अलगावता को निर्धारित किया है, जिसके परिणामस्वरूप वे और अन्य सामाजिक घटनाएँ अपने ऐतिहासिक गठन से स्वतंत्र यादृच्छिक अस्तित्व के रूप में दिखाई देती हैं। किसी भी विधि सिद्धांत की शक्ति निश्चित रूप से उसकी व्याख्यात्मक क्षमता में निहित होती है, और यह बदले में सामाजिक संबंधों की व्यापक छवि पर निर्भर करती है जो इसे उत्पन्न करती है।

तथापि, उत्तरदाताओं की ओर से यह तर्क दिया गया कि भले ही पश्चातवर्ती घटना के कारण वादी-मकान-मालिक धारा 11(1)(सी) में वर्णित आधार पर कब्जा पुनः प्राप्त करने के अधिकारी न रहे हों, फिर भी वे धारा 11(1)(डी) में वर्णित आधार पर अपीलकर्ता की बेदखली कराने के अधिकारी होंगे, क्योंकि सभी न्यायालयों ने एकमत से यह निष्कर्ष दिया है कि अपीलकर्ता सितंबर, अक्टूबर तथा नवंबर, 1972 अर्थात् तीन माह की अवधि का भाड़ा अदा करने में चूककर्ता था तथा, जैसा कि उच्च न्यायालय के निर्णय के कंडिका 3 में उल्लेखित है, इस निष्कर्ष को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती भी नहीं दी गई थी। अपीलकर्ता ने अपनी विशेष अनुमति याचिका में आधार सं. V निम्नलिखित शब्दों में अंकित किया है :

"क्योंकि उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की कि किराया भुगतान में चूक और व्यक्तिगत आवश्यकता के संबंध में दिए गए निष्कर्षों को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी।"

निस्संदेह, उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में इस प्रश्न पर जो कहा है कि किसी विशेष निष्कर्ष को चुनौती दी गई थी या नहीं, वह हमारे लिए सर्वोच्च सम्मान का पात्र है और सामान्यतः इसे हमेशा स्वीकार किया जाना चाहिए। इस मामले के तथ्यों को लेकर हमें दो विशिष्ट कारणों से कुछ संशय है: (i) उच्च न्यायालय के निर्णय में कुछ ऐसे अंश हैं जिनका विशेष रूप से उल्लेख पहले किया गया है, जो दर्शाते हैं कि कुछ पहलुओं का सरसरी तौर पर, स्पष्टता की कमी के साथ निपटारा किया गया है; और (ii) कि एक किरायेदार जिसने स्वयं सहित आठ साक्षियों से यह साबित करने के लिए पूछताछ की कि किराया चुकाया गया था, और जिसने मकान मालिकों द्वारा दिए गए नोटिस के जवाब में विशेष रूप से इस तथ्य का उल्लेख किया था, और जिसने अपीलीय चरण में अतिरिक्त साक्ष्य के लिए आवेदन करके अपने मामले को सावधानीपूर्वक लड़ा था, वह इस दावे को नहीं छोड़ेगा, और यदि उसने

वास्तव में इसे छोड़ दिया होता, तो मामले को सर्वोच्च न्यायालय में ले जाने का कोई औचित्य नहीं था। फिर भी हम विपरीत तर्क को नजरअंदाज कर देते और फैसले में कही गई बात को स्वीकार कर लेते, लेकिन इस तथ्य के कारण कि ऊपर वर्णित बाद की घटना का मकान मालिकों-उत्तरदाताओं के किराए के भुगतान न करने के आधार पर अपीलकर्ता को बेदखल करने के अधिकार पर सीधा प्रभाव पड़ सकता है।

यदि विभाजन वाद सं. 4/74 के डिक्री की प्रमाणित प्रति की जांच और मूल्यांकन करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि संपत्ति विशेष रूप से प्यारेलाल को आवंटित की गई है, हालांकि उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष इस अपील में कुछ शपथ-पत्र दाखिल किया है, फिर भी उन्होंने इस कार्यवाही में पक्षकार बनने के लिए आवेदन नहीं किया है। यदि डिक्री में वर्तमान उत्तरदाताओं के पक्ष में किराए के भुगतान न होने के आधार पर कब्जे की वसूली के लिए कार्यवाही जारी रखने का कोई आरक्षण नहीं किया गया है, और न ही वर्तमान उत्तरदाताओं ने प्यारेलाल शर्मा की ओर से किराए की वसूली के सीमित उद्देश्य के लिए कार्यवाही जारी रखने का कोई दायित्व लिया है, तो हमारी राय में यह अत्यंत संदिग्ध होगा कि क्या उत्तरदाता धारा 11 (1)(सी) और (डी) में उल्लिखित आधारों पर किराए की वसूली और कब्जे के लिए कार्रवाई जारी रख सकते हैं। इस पहलू की जांच न तो प्रथम अपीलीय न्यायालय ने की है और न ही उच्च न्यायालय ने। यदि 'ए' नामक मकान मालिक अपने किरायेदार के विरुद्ध केवल किराया न चुकाने के आधार पर बेदखली की कार्यवाही शुरू करता है और कार्यवाही के दौरान संपत्ति को पूरी तरह से किसी तीसरे व्यक्ति को हस्तांतरित कर देता है, और यदि वह तीसरा व्यक्ति न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं होता है और कोई अंतिम राय व्यक्त नहीं करता है क्योंकि पुनर्विचार के लिए मामला वापस भेजा जाना है, तो यह अकल्पनीय है कि ऐसा मकान मालिक संपत्ति में अपना कोई हित न होने के बावजूद वाद जारी रख सके। इस पहलू की जांच वाद शुरू करने वाले मकान मालिक और उसके अंतरिती के बीच हुए अनुबंध के संदर्भ में की जानी चाहिए, या हस्तांतरिती द्वारा कुछ

अधिकार सुरक्षित रखते हुए वाद को जारी रखने के लिए पक्षकार के रूप में शामिल होने हेतु न्यायालय में आने और उसके वाद को जारी रखने के अधिकार की जांच की जा सकती है। इन पहलुओं की जांच किसी भी न्यायालय द्वारा नहीं की जाती है, हालांकि इन पर निर्णय मामले की जड़ तक जाता है। इसलिए, इस मामले की परिस्थितियों में पुनर्विचार अपरिहार्य है।

तदनुसार, हम इस अपील को स्वीकार करते हैं और उच्च न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय को **अपास्त** करते हैं और वाद को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेजते हैं। प्रथम अपीलीय न्यायालय, आदेश 41, नियम 27 के तहत आवेदन स्वीकार करने और विभाजन वाद सं. 4/74 के निर्णय की प्रमाणित प्रति को अभिलेख पर लेने के बाद, और पक्षकारों को इस अतिरिक्त साक्ष्य के आधार पर कोई अतिरिक्त साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देने के बाद, निम्नलिखित दो प्रश्नों का निर्णय करेगा:

(1) क्या विभाजन का निर्णय वादग्रस्त को पूरी तरह से प्यारेलाल शर्मा को हस्तांतरित करता है?

(2) यदि हाँ, तो क्या उत्तरदाताओं(वादी) मनोहर लाल शर्मा (उत्तरदाता 1) की व्यक्तिगत आवश्यकता के आधार पर और/या किराया अधिनियम की धारा 11(1)(डी) के तहत चूक के आधार पर अपीलकर्ता (उत्तरदाता) को बेदखल करने के लिए कार्रवाई कर सकते हैं और इसके हकदार हैं?

इन मुद्दों पर साक्ष्यों के आधार पर न्यायालय अपने निष्कर्षों के अनुरूप अंतिम राहत प्रदान कर सकता है।

इस निर्देश के साथ अपील को प्रथम अपीलीय न्यायालय को वापस भेजा जाता है। मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

एन.वी.के. *अपील स्वीकार की गई।*

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।